B.A Part III　Paper VI
21/05/2020

Indain Epistemology and Metaphysics
Part I Epistemology

Dr. Anita Kr. Gupta
J. K. College Biraul.

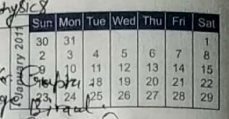

January 2011	Sun	Mon	Tue	Wed	Thu	Fri	Sat
	30	31					1
	2	3	4	5	6	7	8
	9	10	11	12	13	14	15
	16	17	18	19	20	21	22
	23	24	25	26	27	28	29

Prama

लौकिक तथा अलौकिक ज्ञान की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के विषय में अपना सिद्धांत है। इस ज्ञान की प्रक्रिया का 19 SAT नाम, प्रमाण है। प्रमाण अर्थ - ज्ञान का साधन है। यों तो ज्ञान के साधन इन्द्रिय और पदार्थ भी है परन्तु उन प्रक्रियाओं का नाम ही प्रमाण है, जिनसे, मनुष्य विविध प्रकार के ज्ञानों का अर्जन करता है।

प्रमा - अप्रमा प्रमाण से जो ज्ञान अर्जन किया जाता है उसका पारिभाषिक नाम 'प्रमा' है। 'प्रमा' यथार्थ अनुभव को कहते हैं। वस्तुतः इस प्रकरण में ज्ञान दो प्रकार का माना गया है एक अनुभवात्मक और दूसरा स्मृति। 'प्रमा' की परिभाषा में अनुभव शब्द का प्रयोग 'स्मृति' से उसे पृथक जताने के लिए है। स्मरण यथार्थ होते हुए भी अनुभव नहीं इसीलिए उसे 'प्रमा' नहीं कहा जा सकता है।

'यथार्थ' शब्द के सन्निवेश से अयथार्थ ज्ञान, जो संशय, विपर्यय या तर्क से प्राप्त होता है 20 SUN प्रमा नहीं है यह सूचित किया गया है। 'प्रमा' निश्चित यथार्थ अनुभवात्मक ज्ञान को ही कहते हैं। संशयरूप ज्ञान 'यह ठूंठ है या आदमी' में निश्चितता या यथार्थता न होने से 'प्रमा' नहीं कहलाता है। इसी प्रकार सीप में चाँदी या रस्सी में साँप का ज्ञान रूप जो भ्रान्त ज्ञान है वह विपर्यय होने से 'प्रमा' नहीं है। इसी तरह तर्क में ज्ञान के दो पक्ष दिखाई देते हैं उसमें पहले वास्तविक या यथार्थ पक्ष तिरोहित रहता है। बाद में वह प्रमाणों से निश्चित किया जाता है।

इसीलिए इसे प्रमाणों का अनुग्राहक कहा जाता है। सिद्धावस्था से पूर्व तर्कज्ञान भी अनिश्चित होने के कारण 'प्रमा' नहीं कहलाता है इसी 'प्रमा' के कारण का नाम प्रमाण है।

Notes

March 2011	Sun	Mon	Tue	Wed	Thu	Fri	Sat
			1	2	3	4	5
	6	7	8	9	10	11	12
	13	14	15	16	17	18	19
	20	21	22	23	24	25	26
	27	28	29	30	31		

प्रामाण्य - अप्रामाण्य :- प्रमाणों द्वारा जिस ज्ञान का 21 MON अर्जन किया जाता है उसकी सत्यता या असत्यता स्वयं पर निर्भर करती है या किसी दूसरे प्रमाण पर, इसी की विवेचना 'प्रामाण्य - अप्रामाण्य' के अन्तर्गत किया जाता है। यदि ज्ञान की सत्यता - असत्यता स्वयं पर निर्भर करती है तो स्वतः तथा यदि किसी दूसरे पर, तो परतः। न्याय के अनुसार प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य दोनों ही परतः माने गये हैं। इसका सिद्धांत है कि ज्ञान का ग्रहण मानस प्रत्यक्ष द्वारा होता है तथा उसके प्रामाण्य का अनुमान द्वारा। यहाँ पर ज्ञान का अर्थ है यथार्थानुभव। नैयायिक लोग इस ज्ञान का प्रामाण्य समर्थ प्रवृत्ति के आधार पर करते हैं। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है एक सफल तथा दूसरी निष्फल। सफल प्रवृत्ति ही समर्थ प्रवृत्ति है जो प्रमाणों द्वारा उत्पन्न होती है। जो प्रमाण नहीं, अप्रमाण है उससे समर्थ प्रवृत्ति नहीं होती।

22 TUE सामान्य शब्दों में नैयायिकों के अनुसार ज्ञान की यथार्थता एवं अयथार्थता दोनों ही बाह्य साधनों से निर्धारित होते हैं। तथा बाह्य परिस्थितियों से ज्ञान होते हैं। अर्थात उत्पत्ति एवं ज्ञान दोनों ही सन्दर्भों में ज्ञान की सत्यता एवं असत्यता बाह्य हैं मीमांसकों का स्वतः प्रामाण्य व परतः अप्रामाण्य नैयायिकों को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि प्रामाण्य स्वतः माना जाय तो अप्रामाण्य को क्यों परतः माना जाना चाहिए? अतः प्रमाणों की परतः प्रामाणता या अप्रामाणता का ही सिद्धांत नैयायिकों ने अपनाया है।

प्रमाण :→ न्याय के अनुसार प्रमाणों की संख्या चार है:- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। प्रमाणों की यह संख्या 'न्याय दर्शन' में ज्यों की त्यों उपलब्ध होती है।

Notes

January 2011	Sun	Mon	Tue	Wed	Thu	Fri	Sat
	30	31					1
	2	3	4	5	6	7	8
	9	10	11	12	13	14	15
	16	17	18	19	20	21	22
	23	24	25	26	27	28	29

प्राचीन न्याय में तो इनका वर्णन संक्षेप में हुआ है, परन्तु नव्यन्याय में इनका विशेष वर्णन और विशद व्याख्यायें हुई हैं। परिभाषाओं में भी उथल-पुथल हुई है, परन्तु मूलाधार के आधार पर ही ये सब परिवर्तन एवं परिवर्धन किए गए हैं।

—— X ——

23 WED

24 THU

Scanned by CamScanner